समाज की सच्चाइयों का बयान वाया 'कायान्तर'

बिपिन तिवारी

जय श्री रॉय समकालीन युवा कहानी की महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं, 'कायान्तर' कहानीकार का चौथा कहानी संग्रह है। 'कायान्तर' कहानी संग्रह में कहानीकार की विकास-यात्रा को बखूबी देखा जा सकता है। जय श्री रॉय की हाल ही में एक कहानी 'दौड़' हिंदी की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'पहल' के सौंवे अंक में प्रकाशित हुई है। 'दौड़' कहानी ने जयश्री रॉय की बोल्ड इमेज की जो छवि बन गई थी उससे अलग एक छवि निर्मित करती है। इस संग्रह की कहानियों में समाज के विभिन्न वर्गों कों कथा का आधार बनाया गया है। संग्रह की कई कहानियां आज के वर्तमान सच को बहुत बारीकी से अभिव्यक्त करती हैं। कायान्तर संग्रह की एक कहानी है 'तुम आये तो...' यह कहानी एक ऐसे कम्युनिस्ट व्यक्ति कबीर को केन्द्र में रखकर लिखी गई है जो समाज में शोषण, उत्पीड़न को लेकर बहुत दुखी है। वह घंटों अपने दोस्तों के साथ समाज में बदलाव के रास्तों पर बहस करता रहता है। वह शादी को 'मोस्ट नान प्रोडक्टिव कंजमशन' मानता है और बिना शादी किए ही अपनी दोस्त चांपा के साथ रहने लगता है। वह एक तरफ तो इतना प्रगतिशील है कि उसे समाज की हर पुरानी चीज से नफरत है। वह चाहे पुरानी मान्यताएं हो, सोचने का नजरिया हो या कुछ और।

वह एक अखबार में नौकरी करता है और बाकी बचे समय में सस्ती शराब के साथ दोस्तों से बहस में खोया रहता है। वही कबीर सांचा को लेकर एक पुरुषवादी दृष्टिकोण रखता है, जिसमें पुरुष को हर छूट मिली होती है परंतु स्त्री के लिए कोई आजादी नहीं है। वह सांचा की प्रतिभा को किसी भी रूप में स्वीकारने को तैयार नहीं है। वह उसकी कविताओं को कागज की लुगदी मात्र समझता है। "...तुम्हारी इन कविताओं से एक शाम का खाना जुट सकता है? किसी की भूख मिट सकती है? हां, अब तक जो किलो डे. ढ-किलो कचरा इकट्ठा किया है उससे एक बार चूल्हा जरूर जलाया जा सकता है।..." वहीं वह काव्य में सौन्दर्य के बारे में कहता है-"...सौन्दर्य फूल, चांद में नहीं, मजदूरों की मेहनत में है! श्रम के सौन्दर्य को पहचानो...धूल मिट्टी और पसीने से लिथड़ी मजदूर औरतों का रूप देखा है कभी ध्यान से? एक अलग तरह की उत्तेजना और नशे से भर देती है। वर्ग संघर्ष से जो आग पैदा होती है, स्फुलिंग उड़ती है, रक्त की नदियां बहती हैं और अंतत: एक समानता, न्याय और सार्वभौमिक कल्याण की मुकम्मल छवि बनती है, उसे शब्द दो वाणी दो!" कबीर साहित्य को एक औजार के रूप में प्रयोग करना चाहता है जो क्रांति की धार को तेज करने में सहयोग करे। कबीर की नजर में इन भावों से अलग न तो साहित्य का कोई मायने है और न ही साहित्यकार, बुद्धिजीवी का। वह बौद्धिक वर्ग के लोगों के लिए जो रचनाओं के माध्यम से टी. वी. की बहस के माध्यम से क्रांति करते हैं, कहता है-"...इन सबको चाबुक मारकर खेतों, कारखानों में ले जाना चाहिए...चांद पर फूलों की फसल उगा रहे हो? चलो यहां अनाज उगाकर दिखलाओ, कुछ हकीकत में करो, एक जून की रोटी पैदा करो जमीन की सूखी छाती से...फिर देखें आपकी औकात, विश्व प्रेम, मानवतावाद!"

कबीर साहित्य की जो परिभाषा और साहित्यकार का जो उद्देश्य बताता है वह बहुत कुछ अधिनायकवादी है। हिंदी में प्रगतिवादी दौर और नक्सलबाड़ी आंदोलन के प्रभाव में लिखे गए साहित्य में इस प्रभाव को देखा जा सकता है। समाज में बदलाव का यह तरीका पूरी तरह कम्युनिस्ट देशों पर आधारित है। चीन और रूस की क्रांति का रास्ता भारत में नहीं लागू किया जा सकता और न ही साहित्य की भूमिका को इतना सीमित किया जा सकता है। साहित्य सिर्फ शोषण के खिलाफ नहीं लिखा जाता। साहित्य तो जीवन के विविध चित्रों को अभिव्यक्त करता है जिसमें जीवन के सुख-दुख दोनों शामिल हों। कबीर और सांचा के बीच विरोध का जो मूल कारण है वह यही है। कबीर सांचा को किसी भी रूप में स्वीकारने को तैयार नहीं है। वह अपने ऊपर सांचा को थोड़ा भी अधिकार देना नहीं चाहता लेकिन वह सांचा पर पूरा अधिकार रखता है। खाने में दाल रोटी क्यों है? और कुछ क्यों नहीं? सांचा जब इन सबके बारे में या कुछ अपने बारे में उससे कुछ कहना चाहती है तो वह उसे डांट देता है। "बस दिन रात अपना रोना, अपने दुख...कभी खुद से भी बाहर निकलना सीखो!...सिर्फ एक व्यक्ति नहीं, समाज बनकर भी जीना सीखो...अब इन नून-तेल जैसी बेकार बातों में मेरा समय जाया मत करो...।" सांचा जिस तरह की परिस्थिति से गुजर रही है वह ऐसी घुटनभरी जिंदगी है जिसमें अपनी बात कहने के लिए कोई साथी नहीं है। सांचा ने बिना शादी किए ही कबीर के साथ रहने लगती है जिसके कारण उसे पास-पड़ोस के लोगों की नजरों का भी सामना करना पड़ता है। यह हमारे भारतीय समाज की मन:स्थिति है। सांचा भी समाज में बदलाव चाहती है पर वह बदलाव के लिए विध्वंस को जरूरी नहीं मानती। वह कबीर को प्रेम इसीलिए करने लगी थी कि उसमें इस व्यवस्था को लेकर बेचैनी है परंतु उसी कबीर में

भावनाओं के लिए कोई जगह नहीं है। सांचा सोचती है-"...जाने यह कौन सी विचारधारा है जो हाड़-मांस के इन्सान को रोबोट में तब्दील करके रख देती है! प्यार कुछ नहीं, आस्था कुछ नहीं...बस भूख, हथियार और प्रतिशोध! जो परिवर्तन लाना है वह लाशों पर चलकर लाना है...दुनिया को तोड़कर गढ़ना है।"

सांचा इन सबसे ऊब जाती है और अपने खालीपन को भरने का जैसे ही उसे मौका मिलता है वह कबीर को छोड़ देती है। वह अर्पित के शादी के प्रस्ताव को स्वीकार लेती है। कबीर जिन कविताओं को कागज की लुगदी मात्र कहता था वही उसकी मुक्ति का माध्यम बनती है। अर्पित और सांचा के बीच जो कुछ घटित होता है उसका माध्यम सांचा की कविताएं थीं। सांचा ने अपनी कविताएं जिस पत्रिका में छपने के लिए भेजी थीं, अर्पित उस पत्रिका का उप संपादक था। अर्पित विचारों में नास्तिक है पर किसी दूसरे पर अपने विचारों को नहीं थोपता। वह बदलाव को एक अलग रूप में स्वीकारता है। "हम हमेशा युद्ध में नहीं है। छोटी चीजों से भी बदलाव लाया जा सकता है..." सांचा और अर्पित के बीच प्रेम समानता के स्तर पर विकसित होता है। उसमें कोई किसी को अपने से कमतर नहीं समझता जबकि कबीर के साथ सांचा का प्रेम में किसी तरह की समानता नहीं है। कबीर के साथ सांचा प्रेम का अहसास उसकी झिड़कियों में करती है। कबीर स्त्री के मामले में पूरी तरह से सामंतवादी है। इसीलिए उन दोनों के बीच प्रेम का संबंध बन नहीं पाता है। दोनों की रुचियां अलग हैं, दोनों के संस्कार अलग हैं, दोनों की सोच अलग हैं। ऐसे में सांचा द्वारा कबीर को छोड़ना स्त्री का अपने अधिकारों के प्रति सचेत होना है। वह कबीर को उसकी भाषा में जवाब देती है। "आइंदा मेरा पति बनने की कोशिश मत करना!"

वहीं इस संग्रह की कहानी 'ज़ून, ज़ाफरान और चांद की रात' कहानी में कश्मीर घाटी में हो रहे बदलाव को रेखांकित करती है। कहानी में कश्मीर घाटी के बदलाव को एक अलग धरातल पर शाह और हब्बा खातून की कहानी के माध्यम से दिखाया गया है। एक समय ऐसा था जब कश्मीर की डल झील की सुंदरता को दूर-दूर से सैलानी देखने आते थे लेकिन जब से दहशतगर्दी शुरू हुई तब से सब खत्म हो गया। अब सैलानी यहां आने से डरते हैं। कहानी में जिस ज़ाफरान की खेती का जिक्र किया गया है वह अद्भुत है। आंखों के सामने पूरा का पूरा दृश्य उपस्थित हो जाता है। कैसे ज़ाफरान के फूल से केशर निकाला जाता है, कैसे उसे पतझड़ की हल्की धूप में सुखाया जाता है? आदि का बारीकी से चित्रण किया गया है। इसके साथ ही शाह और हब्बा खातून की प्रेम कहानी चलती है। हब्बा अपने शाह से मिल नहीं पाती जिसकी पीड़ा उसके गीतों में भरी पड़ी है। हब्बा के इन गीतों को याद करके आज भी घाटी की लड़कियां आंसुओं से विस्तर भिगोती रहती हैं। घाटी में आज भी जून और राजा यूसुफ की कहानी सुनने को मिल जाती है। "कहते हैं, चौदहवीं की उजली रातों में जब-जब केशर की गहरी नीली क्यारियों से खुशबू की गर्म लपटें उठती हैं और पूरी वादी चांदनी में नहा जाती है, लोगों को राजा यूसुफ शाह चाक के घोड़े की टापों की आवाज और उसका हिनहिनाना सुनाई पड़ता है! साथ ही हब्बा के गीत-उदास और दुख भरे...गांव के जर्रे-जर्रे में किसी आसेब की तरह उतरती हुई चांदनी में जैसे कोई प्यासी रूह रोती फिरती है।...कुंवारी लाड़किया इन्हें सुनते हुए रो-रोकर अपना सिरहाना भिगो देती हैं, बेवायें अपनी सूनी कलाइयों में कहीं दूर खो गयी चूड़ियों की खनक ढूंढ़ती रात गुजार देती हैं..."

हब्बा खातून सोलहवीं सदी की एक प्रसिद्ध कवियत्री है जिसकी कहानी को इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि उससे आज की वर्तमान कश्मीर की स्थिति को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। हब्बा खातून जिसे प्यार से उसके मां-बाप ज़ून यानी चांद कहकर बुलाते हैं। हब्बा खातून की शादी एक किसान परिवार में हो गयी। जून को पढ़ने-लिखने का शौक और गीत गाने की आदत थी। ससुराल वालों को यह आदत पसंद नहीं लिहाजा जून को अपनी ससुराल छोड़नी पड़ी। अब जून अपने पिता के घर में रहकर गीत गा रही थी। इसी समय उसकी घाटी में मुलाकात 'राजा यूसुफ शाह' से होती है जो उसके रूप सौन्दर्य पर इस तरह मोहित हुआ कि उसने जून से शादी कर ली। लेकिन कुछ समय बाद राजा यूसुफ शाह एक युद्ध में बंदी बना लिये गये। हब्बा उसकी याद में पागल हो गई और उसी पागलपन में वह घाटियों के बीच अपने दु:ख भरे गीत गाती रहती थी। इन गीतों में इतनी तड़प थी कि सुनने वाला अपने को रोक नहीं पाता था। आज कश्मीर की घाटी में न जाने कितनी ज़ून अपने यूसुफ शाह के लिए तड़प रही है। कहानीकार यहां ज़ून को पूरी घाटी के मेटाफर के रूप में प्रयुक्त करता है। आज घाटी भी ज़ून की तरह ही सैलानियों का इंतजार कर रही है। यह कहानी हृदय को बहुत गहरे स्तर तक प्रभावित करती है। कहानी में ज़ून का सौन्दर्य कुछ इस तरह से चित्रित किया गया है कि . जून के सौन्दर्य को घाटी के सौन्दर्य से अलग करके नहीं देखा जा सकता। "केसर के जामुनी बाग में गीत गाते हुए नीले चांद सी! उस वक्त उसके पूरे जिस्म में रात का फीका रंग और चांदनी की झिलमिल रंगोली थी। बिखरे बालों में किरणों के अनगिन रेशे चमक रहे थे, होठों के ताजे कंवल पर शबनम की रोशन बूंदों के जलते-बुझते जुगनू...इक गुदाज गज़ल या जिस्म के संगमरमर में ढला हुआ इक गीत-औरत के नाजुक लिबास में!..." इस सौन्दर्य में काव्य के प्रभाव को साफतौर से देख सकते हैं। जिसमें किसी भी तरह की कोई नग्नता नहीं है। प्रकृति के विविध रूपों से ही जैसे जून का सौन्दर्य रचा गया है। प्रसाद जी ने अपनी महाकाव्यात्मक कृति कामायनी में श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन इसी रूप में किया है, "रचित परमाणु पराग शरीर खड़ा हो ले मधु का आधार"।

वहीं संग्रह की 'थोड़ी सी ज़मीं, थोड़ा आसमां...' कहानी विस्थापन की सचाई बयान करती है। कश्मीरी पंड़ितों को अपने ही देश में किस तरह की पीड़ा से गुजरना पड़ता है इसे बहुत गहराई से विवेचित किया गया है। कश्मीरी पंडित अपने ही देश में कान्सट्रैशन कैम्पों में रहनें को मजबूर हैं। जो भी लोग इसके खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करते हैं वह सभी के दुश्मन हो जाते हैं। जैसे यहूदियों के दुश्मन दुनिया भर में भरे पड़े है। जर्मनी, पोलैंड, सोवियत रूस उनको कहां नहीं सताया गया। विस्थापन की इस पीड़ा को कश्मीर का हिमालय, पाकिस्तान का जमील, अफगानिस्तान का यशपाल, जर्मनी की लिजा सभी झेल रहे हैं। यह सभी अपने देश से बेपनाह मुहब्बत करते हैं। जर्मनी का विश्वप्रसिद्ध बंदरगाह हाम्बोर्गा हाफेन, जहां पर सभी पात्र मिलते हैं। यह अलग-अलग पात्र अलग-अलग विस्थापन की पीड़ा से गुजर रहे हैं। इन सभी को यहां 'आउस लैंडर' यानी विदेशी माना जाता है। हर समय के अपमान और अत्याचार से यह सभी मुक्त हो जाते हैं। लिजा तो अपने उन पुरखों की याद में यहां हर साल यहां आती है जो जर्मनी के मिट्टी में दफन हो गये हैं। वह रात के सन्नाटे में उनकी चीखें सुनती रहती है। हिमालय तो अपने परिवार की याद करके अपने अतीत में खो जाता है। लेकिन उस अतीत में सुखद स्मृतियों की जगह दहशत अधिक

है। "...अपनी ही मिट्टी के लोग आंखों में अंगार भरकर चिल्लाते हुए-अल जेहाद! अल जेहाद! अल जेहाद!! उन नफरत के जहर उगलते फेनिल होठों ने उन्हें कितना त्रस्त, कितना अकेला कर दिया था कि कुछ ही दिनों के भीतर लाखों पंडितों ने अपनी जन्नत, अपना कश्मीर छोड़ दिया था।...जाने कब से भाग रहे हैं हम इस नफरत से।...अपनी रूह, अपनी पहचान, आस्था, पवित्र किताबों की हिफाजत के लिए बस भाग रहे हैं-आज भी! पीछे-पीछे वही फतवा या तो हममे विलीन हो जाओ, या खत्म हो जाओ या इस जमीन से दफा हो जाओ..."

कहानी का फलक बहुत व्यापक है जिसमें अपने देश के प्रति अथाह प्रेम है और दूसरी तरफ अपने ही देश से निर्वासन की पीड़ा का दु:ख भी, ठीक यही पाड़ा यहूदियों की है। लिजा यहूदियों के लिए कहती है कि अपने देश के महत्व, घर का महत्व क्या होता है इसे तुम किसी यहूदी से पूछ सकते हो। वह इसके लिए अपनी जान तक देने से भी पीछे नहीं हटते। इसरायल में जो कुछ हो रहा है उसके मूल में यही भावना है। कहानी जिस यथार्थ को हमारे सामने प्रकट करती है वह हमारे समय की सबसे बड़ी विडंबना है। आज हम किसी न किसी रूप में पूर्वाग्रह से इतना ग्रसित हैं कि हम न अपने कश्मीरी भाइयों के बारे में सही से सोच पाते हैं और न ही अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहे यहूदी भाइयों के लिए। आज यही हालात भारत में कुछ दूसरे कौम के लोगों को भी झेलने पड़ रहे हैं। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से कहानीकार ने विस्थापन की पीड़ा को इस तरह प्रस्तुत किया है कि एक ही साथ हम विभिन्न देशों के नागरिकों की पीड़ा को महसूस सकते हैं।

वहीं 'कायान्तर' कहानी जिसके नाम पर ही कहानी संग्रह है वह ग्रामीण समाज का एक ऐसा सच प्रस्तुत करती है जिसमें एक स्त्री की विडंबना को बहुत गहराई से दिखाया गया है। गांव में दलित समाज के साथ जिस तरह का व्यवहार आज भी गांव के ठाकुर करते हैं उसे कहानी में दिखाया गया है। यह कहानी सिर्फ फूलमती और बिगेसर की नहीं है अपितु यह उस समाज की वास्तविक सच्चाई है जिसके बारे में हम एक पूर्वाग्रह पाले हुए हैं। कथा पात्र फूलमती को अपने पिता के घर से लेकर ससुराल तक में प्रताड़ना के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। उसे न तो बचपन का अहसास हो पाता है और न ही जवानी का। वह इस विडंबना को कहती भी है। "...अब ई प्यार-दुलार सुहाता नहीं! बस मार-दुत्कार का आदत हो गया है। बचपन में माय मर गयी थी। बाप तीन महीने के भीतर सौतेली माय ले आया। समझो चुरइल का दूसरा रूप! ऊ हमको उठते बैठती सताती और बाप भट्टी से दारू ढकोर कर पलानी में बेसुध पड़ा रहता। एक भाई सो भी साहूकार का पतलचट्टा! ऊपर से गांजाखोर भी!... दस साल के उमर में ही सौतेली माय ने रेजा-कामिन के काम में लगा दिया था। तो बस हाड़तोड़ काम, मार आउर दुख। बस एही तो मिला है जिनगी भर... उहां चाहे इहां..."

कहानी पात्र बिगेसर को गांव के राम सिंघावन ने उसके यहां काम छोड़ने पर इतना मारा था कि वह खत्म हो गया। इसके बाद तो फूलमती को थाने पर रोज-रोज बुलाया जाना और फिर गांव के लोगों द्वारा उसके बारे में तरह-तरह की अफवाहें फैलाया जाना, यह एक ऐसा यथार्थ जिस पढ़ते समय मन शर्म से झुक जाता है। आखिर किस तरह के समाज में हम जी रहे हैं। वही फूलमती बाद में देवी बन जाती है। लोगों को आर्शीवाद देने का उसके तरीके में उसके भीतर की बेचैनी को देखा जा सकता है। "...न फल न भभूत! बस लात और गालियां। ऐसी-ऐसी गन्दी

गालियां कि सुनने वालों के कान लाल हो जाते हैं। सबको माई के सामने जाकर साष्टांग लेटना पड़ता है। जिस पर माई प्रसन्न होती है उसके माथे, पीठ, कन्धे पर धमाधम लात मारते हुए गाली-गलौज से उसके सात पुस्तों का श्राद्ध करती है, फिर उसका झोंटा पक. डकर अपने आंगन से बाहर निकाल देती है। सिर्फ छोटे बच्चों को अपनी गोदी में लेकर झुलाती है और लोरी गाती है।...''

फूलमती को समाज द्वारा इस तरह से प्रताडि. त किया जाता है कि वह एक सामान्य जीवन भी नहीं जी पाती। उसकी प्रताड़ना में सौतेली मां, सास, पति, गांव के बहुत से लोग शामिल है। उन सबका वह बदला लेती है। कहानीकार जिस तरह का कहानी का अंत करती है उससे कहानीकार की पक्षधरता को देख सकते हैं। कहानी में फूलमती के चरित्र का इस रूप में विकास किसी करिश्माई अंदाज में नहीं किया गया है अपितु इसे गांवों में सहज रूप में देखा जा सकता है। प्रेमचंद ने जिस दलित, पीडित्र लोगों की पक्षधरता की बात साहित्य का उद्देश्य निबंध में कही है वह यहां स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त इस संग्रह की अन्य कहानियां-काली कलूटी, तुम आये तो आदि में यथार्थ के एक नए आयाम को उद्घाटित करती हैं। इस संग्रह से जय श्री रॉय जी की साहित्य में एक अलग छवि निर्मित होगी और हिंदी समाज इस रचना का भरपूर स्वागत करेगा, ऐसा मेरा मानना है।

❖ ❖ ❖